

यह नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार है। ७१ गाथा। १००वाँ कलश। १०० कलश है न? अरिहन्त कैसे हैं - उनका स्वरूप है।

मदन-नग-सुरेशः कान्त-काय-प्रदेशः,

पदविनतयमीशः प्रास्तकीनाशपाशः।

दुरघ-वन-हुताशः कीर्ति-सम्पूरिताशः,

जयति जगदधीशः चारु-पद्म-प्रभेशः॥१००॥

पद्मप्रभ भगवान की स्तुति करते हैं। स्वयं का पद्मप्रभ नाम है न? टीकाकार का पद्मप्रभ नाम है। उस नाम से भगवान पद्मप्रभ को याद करके अरिहन्त का इस प्रकार स्तवन और स्तुति करते हैं।

श्लोकार्थः कामदेवरूपी पर्वत के लिए (अर्थात् उसे तोड़ देने में) जो (वज्रधर) इन्द्र समान हैं,... इन्द्र के हाथ में वज्र होता है; इसलिए उसे वज्रधर कहा जाता है। इसी तरह भगवान पद्मप्रभ भगवान कामदेवरूपी पर्वत के लिए (अर्थात् उसे तोड़ देने में) जो (वज्रधर) इन्द्र समान हैं,... वाह ! मदन-नग-सुरेशः मदनरूपी पर्वत को सुरेशः अर्थात्

इन्द्र की तरह। सुरेश-इन्द्र का ईश। वज्रधर तो डाला वह... आया न, इसलिए नाम डाला। आहाहा! वज्र, वज्र से जैसे पूर्ण होता है; इसी तरह भगवान आत्मा कामदेव की वासना का तो चूर्ण कर डाला है।

कान्त (मनोहर) जिनका कायप्रदेश है,... यह बाह्यबुद्धि। जिनका मनोहर शरीर है। परमौदारिक, ऐसा कहते हैं। अरिहन्त के शरीर को व्याधि, क्षुधा, तृषा, रोग ऐसा होता नहीं। कान्त शरीर है, मनोहर शरीर है। **जिनका कायप्रदेश है,...** अर्थात् शरीर के प्रदेश। भगवान आत्मा के प्रदेश तो निर्मल, परन्तु उनके शरीर के प्रदेश भी निर्मल हैं। परमौदारिक शरीर है न? प्रत्येक अरिहन्त को ऐसा होता है। यहाँ तो अभी पद्मप्रभ नाम से याद किया है।

मुनिवर जिनके चरण में नमते हैं,... मुनिवरों-जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है, ऐसे मुनिवर भी सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा के चरण में नमते हैं। उन्हें भी भक्ति होती है - ऐसा कहते हैं। मुनिवर—आचार्य, उपाध्याय, साधु इत्यादि अरिहन्त के चरण में, वीतरागता पूर्ण प्रगट हुई है - उनके चरणों में नमते हैं।

मुमुक्षु : हेयबुद्धि से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये बिना रहता है? हेय है, परन्तु आता है या नहीं? भक्ति का विकल्प है, वह तो उपयोग है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। होगा ही इसलिए? वह तो है, वह आदरणीय नहीं, परन्तु है या नहीं? है, उसे आदरणीय नहीं, ऐसा कहना। भाव तो आता है। आदरणीय नहीं है, हेय है। हेय किसलिए करना? वह आये बिना रहता ही नहीं। सब कहे—अग्नि कहे, धगधगता अंगारा कहे, शुभभाव है, कषाय है, राग है। मुनिवरों को भी आता है, होता है, जानते हैं। ऐसा स्वरूप ही है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग शान्तरस से पूर्ण परिणमित हो गये हैं। उन पर मुनिवरों को भी भक्ति आती है।

जिनके चरण में नमते हैं, यम के पाश का जिन्होंने नाश किया है,... **प्रास्तकीनाशपाश:** यम के पाश का, बन्धन का जिन्होंने नाश किया है। भाव का बन्धन नहीं रहा - ऐसा कहते हैं। **दुष्ट पापरूपी वन को (जलाने के लिए) जो अग्नि हैं,...** दुष्ट पाप और पुण्य दोनों, ऐसा जो वन, उसे जलाने को जो अग्नि है। अर्थात् कि उन्हें है नहीं। वीतराग शान्तरस अकषायस्वभाव से जिनका परिणमन है, (उन्होंने) ऐसे पाप और पुण्य के वन को जला डाला है। जलाने को समर्थ हैं - ऐसा कहा जाता है।

सर्व दिशाओं में जिनकी कीर्ति व्याप्त हो गई है... पुण्य लिया। चारों दिशाओं में जिनकी कीर्ति पसर गयी है, व्याप्त हो गयी है। **कीर्ति-सम्पूरिताशः** तीर्थकर (हैं), इसलिए और अरिहन्त की गुणदशा पूर्ण, उनकी पुण्यप्रकृति पूर्ण ऐसी होती है कि चारों दिशाओं में इन्द्र आदि उनका आदर करते हैं। ऐसी कीर्ति व्याप्त हो गयी है। यह तो पवित्रता और पुण्य दोनों की बात करते हैं। बतलाना होवे तो बतलावे न ? और **जगत् के जो अधीश (नाथ) है,...** जो जगत के नाथ हैं। व्यवहार से नाथ कहने में आता है। तीन लोक के जाननेवाले हैं न, इसलिए उसमें नाथ हैं।

वे सुन्दर पद्मप्रभेश जयवन्त हैं। ऐसे सुन्दर पद्मप्रभ भगवान... देखो! यहाँ तो कान्त जिनका कायप्रदेश है। यह तो अरिहन्तरूप से स्मरण किया है। नहीं तो वे तो सिद्ध हो गये हैं। अभी तो सिद्ध हैं। अरिहन्त की अस्ति में थे, उसकी स्तुति है। अभी तो सिद्ध हो गये हैं। यहाँ लोगस्स में आता है न ?.. तीर्थकर मुझे प्रसन्न होओ। तीर्थकर हो गये, तीर्थकर तो अभी सिद्ध हो गये।में आया था न ? लोगस्स में आता है। तीर्थकर तो मोक्ष पधारे हैं। अभी तीर्थकर नहीं हैं, परन्तु उन्हें तीर्थकर की अस्ति थी, उस प्रकार से स्मरण करके वन्दन किया है। भूतकाल में तीर्थकर थे न ? 'तिथ्ययरा में पसिवंतु' - ऐसा है न उसमें ? तीर्थकर मुझे प्रसन्न होओ। प्रसन्न होते होंगे ? अपना आत्मा अपने में प्रसन्न होवे, उसे भगवान मुझे प्रसन्न होओ - ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। भगवान तो वीतराग हैं। वे प्रसन्न नहीं होते और अप्रसन्न भी नहीं होते। वे तो सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा वीतराग हैं। अपने आत्मा में आनन्द की, शान्ति की प्रसन्नता वर्तती है; इसलिए मानो कि भगवान प्रसन्न हैं। मैं स्वयं मेरे लिए प्रसन्न हूँ, भगवान मुझे प्रसन्न है। यह ७१ गाथा हुई।

गाथा-७२

णट्टुकम्मबंधा अट्टमहागुणसमणिया परमा ।
 लोयग-ठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ॥७२॥

नष्टाष्टकर्मबन्धा अष्टमहागुणसमन्विताः परमाः ।
 लोकाग्रस्थिता नित्याः सिद्धास्ते ईदृशा भवन्ति ॥७२॥

भगवतां सिद्धिपरम्पराहेतुभूतानां सिद्धपरमेष्ठीनां स्वरूपमत्रोक्तम् । निरवशेषेणान्तर्मुखाकार-
 ध्यानध्येयविकल्पविरहितनिश्चयपरमशुक्लध्यानबलेन नष्टाष्टकर्मबन्धाः; क्षायिकसम्यक्त्वा-
 द्यष्टगुणपुष्टितुष्टाश्च; त्रितत्त्वस्वरूपेषु विशिष्टगुणाधारत्वात् परमाः; त्रिभुवनशिखरात्परतो
 गतिहेतोरभावात् लोकाग्रस्थिताः; व्यवहारतोऽभूतपूर्वपर्यायप्रच्यवनाभावान्नित्याः; ईदृशास्ते
 भगवन्तः सिद्धपरमेष्ठिन इति ।

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं ।
 लोकाग्र में जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं ॥७२॥

गाथार्थः—[नष्टाष्टकर्मबन्धाः] आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होंने नष्ट किया है,
 ऐसे [अष्टमहागुणसमन्विताः] आठ महागुणों सहित, [परमाः] परम, [लोकाग्र-
 स्थिताः] लोक के अग्र में स्थित और [नित्याः] नित्य - [ईदृशाः] ऐसे [ते सिद्धाः]
 वे सिद्ध [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :—सिद्धि के परम्पराहेतुभूत ऐसे भगवन्त सिद्धपरमेष्ठियों का स्वरूप
 यहाँ कहा है ।

[भगवन्त सिद्ध कैसे होते हैं] (१) निरवशेषरूप^१ से अन्तर्मुखाकार, ध्यान-
 ध्येय के विकल्परहित निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध

१. निरवशेषरूप से = अशेषतः; कुछ शेष रखे बिना; सम्पूर्णरूप से; सर्वथा । [परमशुक्लध्यान का आकार
 अर्थात् स्वरूप सम्पूर्णतया अन्तर्मुख होता है ।]

को नष्ट किया है ऐसे; (२) क्षायिक^१ सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों की पुष्टि से तुष्ट; (३) विशिष्ट गुणों के आधार होने से तत्त्व^२ के तीन स्वरूपों में परम; (४) तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित; (५) व्यवहार से अभूतपूर्व पर्याय में से (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण नित्य - ऐसे वे भगवन्त परमेष्ठी होते हैं।

गाथा ७२ पर प्रवचन

७२ वीं गाथा, सिद्ध की (है)। वह (७१ वीं) अरिहन्त की गाथा थी। अब सिद्ध की गाथा। व्यवहार है न, व्यवहार ? इसमें पाँचों परमेष्ठी रखे। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, व्यवहार और निश्चय दोनों डाले।

णट्टकम्मबंधा अट्टमहागुणसमण्णिया परमा ।

लोयग-ठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ॥७२॥

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं।

लोकाग्र में जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं ॥७२ ॥

सिद्ध का अर्थ शाश्वत बताया। लो !

टीका : सिद्धि के परम्पराहेतुभूत... सिद्ध भगवान् मुक्ति के परम्परा हेतु हैं। साक्षात् हेतु तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य है। इनका निमित्त है, इसलिए परम्परा हेतु कहा जाता है। साक्षात् सिद्धपरमात्मा इसकी मुक्ति का साक्षात् कारण नहीं है। साक्षात् कारण तो स्वचैतन्य के आश्रय से वर्तते दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य, ये साक्षात् कारण हैं। उसमें व्यवहार श्रद्धा सिद्ध भगवान् की आती है; इसलिए परम्परा हेतु कहने में आया है। परम्परा निमित्त, ऐसे भगवन्त सिद्धपरमेष्ठियों का स्वरूप यहाँ कहा है।

-
१. सिद्धभगवन्त क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध इन आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट - आनन्दमय होते हैं।
 २. सिद्ध भगवन्त विशिष्ट गुणों के आधार होने से बहिःतत्त्व और परमतत्त्व ऐसे तीन तत्त्वस्वरूपों में से परमतत्त्वस्वरूप हैं।

[भगवन्त सिद्ध कैसे होते हैं] अब सिद्ध कैसे हुए - यह बात साथ में कहते हैं ।
 (१) निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार, ध्यान-ध्येय के विकल्परहित निश्चय-
 परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया है ऐसे;... लो,
 ऐसा कहा है । अपवास करके या ऐसा करके कर्म नाश किया है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते
 हैं । वह तो विकल्प है । यह तो निरवशेषरूप से... अशेषतः; कुछ शेष रखे बिना; सम्पूर्णरूप
 से; सर्वथा । [परमशुक्लध्यान का आकार अर्थात् स्वरूप सम्पूर्णतया अन्तर्मुख होता है ।]

आत्मा अन्तर पूर्णानन्दस्वरूप है, उस पर शुक्लध्यान अन्तरस्वरूप है । अन्तर में
 स्वरूप है, वह बाह्य है नहीं । निरविशेषरूप से जिसने अन्तर्मुख ध्यान-ध्येय के
 विकल्परहित... ध्यान करना और यह ध्येय भगवान आत्मा है, ऐसे भेद का भी जहाँ
 विकल्प अर्थात् राग नहीं है । आहाहा ! ऐसे ध्यान और ध्येय के विकल्प अर्थात् रागरहित
 अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है । शुक्लध्यान का । अन्तर्मुख जिसका भाव है; जरा भी
 बहिर्मुख नहीं । ऐसे निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से... लो, वापस परमशुक्ल ।
 परमशुक्ल - ध्यान, ऐसा । अन्तर के शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान में अन्तर्मुख होकर जो
 परमशुक्लध्यान प्रगट हुआ, उसके बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया
 है... वे चार तो सही परन्तु दूसरे चार नये अर्थात् आठ नष्ट किये हैं, ऐसा कहते हैं । चार
 घातिकर्म तो अन्तर्मुख के ध्यान द्वारा नष्ट होते हैं । अन्तर्मुख की परिणति द्वारा नाश होते हैं ।
 बहिर्मुख के किसी भी विकल्प द्वारा किसी कर्म का नाश नहीं होता । आहाहा !

दर्शनमोह का नाश अन्तर्मुख दृष्टि के स्वरूप से वह नाश होता है । देखो ! इसमें ऐसा
 आता है न कि जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है । धवल
 में आता है न ? वह तो निमित्त की व्याख्या है । जिनबिम्ब तो यह आत्मा अन्तर वीतरागमूर्ति
 प्रभु में अन्तर्मुख होकर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है । समझ में आया ? आठों ही कर्मों
 का नाश कहा न ? अन्तर्मुखाकार । अन्तर्मुखाकार पहले धर्मध्यान का अन्तर्मुखाकार है ।
 यह अशेष भी अन्तर्मुखाकार है । सब पूर्ण रीति से । धर्मध्यान में सम्यग्दर्शन होने में भी,
 दर्शनमोह के नाश में भी अन्तर्मुख आश्रय है । पूर्ण आनन्दस्वरूप के आश्रय से ही दर्शनमोह
 का नाश होता है । समझ में आया ? शुभोपयोग से शुद्धोपयोग होता है, ऐसा नहीं - ऐसा
 कहते हैं । शुभोपयोग तो बाहर का व्यापार है । शुद्ध है, वह तो अन्तर्मुख का व्यापार है । दोनों
 की दिशा में अन्तर है ।

निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार,... तो पहले अन्तर्मुख के स्वरूप से दर्शनमोह का नाश किया, पश्चात् अन्तर्मुख में चारित्र (मोह) का भी नाश हुआ, पश्चात् पूर्ण अन्तर्मुख हुए, तो आठों का नाश हुआ। यहाँ तो उन चार अघाति का भी अन्तर्मुखाकार नाश किया। निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया है... वे सिद्ध कैसे हुए, यह बतलाते हैं। सिद्धपद इस प्रकार से प्राप्त होता है। किसी बाहर के क्रियाकाण्ड से वह प्राप्त नहीं होता। समझ में आया ? यह तो आठ कर्म का नाश किया। अट्टमहागुणसमण्णिया—क्षायिक सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों की पुष्टि से तुष्ट;... हैं। आठ गुणों की पुष्टि से आनन्दमय हैं। नीचे (फुटनोट) सिद्धभगवन्त क्षायिक सम्यक्त्व,... समकित पहले लिया, लो ! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध इन आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट - आनन्दमय होते हैं। इसमें चारित्र नहीं आया, इसलिए कितने ही ऐसा कहते हैं कि उन्हें चारित्र नहीं होता। (किन्तु) यह मिथ्या बात है। चारित्र आ गया। अनन्त सुख है न ? समकित का सुख और चारित्र का सुख दोनों होकर अनन्त सुख प्रगट हुआ। सिद्ध भगवान में भी चारित्र है। अपना चारित्रगुण स्वभाव पूर्ण प्रगट हो गया है। व्यवहारचारित्र के नाम जो हैं सामायिक और... वह है। वह चारित्र नहीं आया। कोई कहे सिद्ध का चारित्र नहीं। सिद्ध को पूर्ण चारित्र है। आहाहा ! वहाँ यह चारित्र क्या होता है ? अपने स्वरूप के आनन्द में रमणता, वह चारित्र है। वह पूर्ण रमणता प्रगट हो गयी, वह पूर्ण चारित्र है।

तुष्टि-सन्तुष्ट हैं। तुष्ट हैं न ? तुष्ट-तुष्ट हैं। आठ गुणों से सन्तुष्ट। सन्तुष्ट अर्थात् आनन्द है। अनन्त आनन्द भी साथ में है। आहा ! गुण कहे हैं परन्तु वह है पर्याय। गुण कहे हैं न ? क्षायिक समकित आदि अष्ट गुण। लो, कितने ही यह कहते हैं न, भगवान ने आठ गुण कहे हैं, तुम कहते हो कि वह पर्याय है। भगवान ने पर्याय कही है। पर्याय को ही गुण कहा है। गुण प्रगट होते होंगे ? गुण तो त्रिकाल है। यहाँ तो पुष्टि से तुष्ट है। सब आनन्दसहित प्रगट हुए हैं। पर्याय की बात है। सिद्ध भी पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है, उनकी उल्टी अवस्था संसार है। पूर्ण सुल्टी अवस्था, वह मोक्ष है, पर्याय है। समकित भी पर्याय है। चारित्र भी पर्याय है, सिद्ध भी पर्याय है।

विशिष्ट गुणों के आधार होने से तत्त्व के तीन स्वरूपों में परम;... हैं। सिद्ध भगवान तो विशिष्ट गुणों के आधार होने से... गुण अर्थात् पर्याय। बहिरर्तत्व, अन्तःतत्त्व और

परमतत्त्व । ऐसे तीन तत्त्वस्वरूप में से परम तत्त्वस्वरूप पर्याय, स्वयं उत्कृष्ट पर्याय है न ? वह परमतत्त्व । यहाँ ध्रुव की बात नहीं है । विशिष्ट गुणों के आधार होने से... विशिष्ट समस्त पर्यायें पूर्ण प्रगट हुई होने से उनकी पर्याय का आधार सिद्ध भगवान हैं । इन तत्त्व के तीन स्वरूपों में... बहिर्तत्त्व, अन्तःतत्त्व-द्रव्य; बहिर्तत्त्व-पर्यायें, इनमें भी परमतत्त्व अर्थात् सिद्ध की पूर्ण पर्याय उत्कृष्ट है । लो, तीन स्वरूप में परम हैं । पूर्ण दशा प्रगट हुई है ।

तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित;... हैं । लो, लोक के अग्र में सिद्ध भगवान विराजते हैं । तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से... व्यवहार से बात की है । लोक के अग्र में स्थित;... है, वह बराबर निश्चय है । निश्चय अर्थात् ? पर के कारण से नहीं, स्वयं के कारण से स्थित हैं । इस प्रकार निश्चय तो स्वरूप में स्थित है । लोक के अग्र में स्थित हैं, यह तो व्यवहार कहने में आता है । तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित;... हैं । धर्मास्ति का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित हैं । इसका अर्थ ही यह है । उनकी अवस्था ही वहाँ रहने की योग्यता है, इसलिए धर्मास्ति नहीं है । व्यवहार से... व्यवहार है, परन्तु निश्चय तो यह है । लोक के अग्र में सिद्ध भी कथंचित् परतन्त्र है ऐसा (लोग) कहते हैं । ऐसा नहीं है । पूर्ण स्वतन्त्र हैं । कहते हैं न कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र – ऐसा लगाते हैं । अनेकान्त को जहाँ-तहाँ ऐसी विपरीतता कर देते हैं । कदाचित् शुभभाव से धर्म हो, कदाचित् शुद्ध से भी हो । कदाचित् समकित से बन्ध भी हो और समकित से मुक्ति भी हो, इसका नाम (लोग) अनेकान्त कहते हैं ।

मुमुक्षु : गति मिलती है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित से क्या गति मिले ? राग से मिलती है । ऐसी भाषा समकित के साथ है, इसलिए ऐसा कहा है । समकित है, वह तो निर्मल दशा है । निर्मल दशा से स्वर्ग मिले ? तीर्थकरणना, वह भी शुभभाव का अपराध है । तीर्थकरणना बाँधे और मुनि को आहारक शरीर बाँधे, वह शुभोपयोग का अपराध है । आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कल्याण करता था ? स्वयं को ऐसा शुभभाव आया, हो गया । एक मनुष्य के दो भव होंगे । एक भव में केवल (ज्ञान) नहीं ले सकेगा ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या ? इसका अभाव करेगा, उसे मुक्ति होगी । जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधा, उस भाव का भी अभाव करेगा । आहाहा ! कैसी बात ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है । वाद-विवाद करे, इससे कहीं वस्तु बदल जाएगी ? तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव अपराध है – ऐसा पुरुषार्थसिद्धियुपाय में (गाथा २२०) पाठ है । अपराध है, ऐसा पाठ है । अमृतचन्द्राचार्य (का पाठ है) । आहाहा ! पंच महाव्रत के परिणाम, वह अपराध है, विकल्प है, राग है । जगत को पकड़ा हो, उसमें से निकलना, भारी काम ।

तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से... कारण यह दिया, देखो यह । परन्तु पहले परिणमन सिद्ध किया न ? समझ में आया ?लोक के अग्र में स्थित;... हैं । लो, वहाँ निमित्त नहीं और वहाँ स्थित स्वयं उपादान से है । बस, उपादान बताते हैं । स्वयं को भी आगे जाने की योग्यता है ही नहीं । व्यवहार से वे सिद्ध भगवान व्यवहार से नित्य कहने में आते हैं । पाठ है न ? लोयग-ठिदा णिच्चा व्यवहार से नित्य है । निश्चय से तो परिणमन समय-समय में बदलता है । सिद्ध भी समय-समय में बदलते हैं । स्तुति में एक आता है, प्रभु ! तुम तो समय-समय में बदलते हो, मैं तो असंख्य समय में बदलता हूँ । असंख्य समय का ख्याल आता है । वह भी बदलता है तो समय-समय में । असंख्य समय में ख्याल आता है । स्तुति में आता है । कहीं आता होगा । तुम तो समय-समय में बदलते हो, परन्तु मुझे तो अन्तर्मुहूर्त में बदलता है । इसका अर्थ कि मेरी ऐसी स्थूलता है । आपको सूक्ष्मता प्रगट हो गयी है । व्यवहार से वे नित्य हैं ।

अभूतपूर्व पर्याय... भगवान को पूर्व में नहीं थी, ऐसी सिद्धपर्याय प्रगट हुई । (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण यह पर्याय हुई, इसमें से नाश होने का अभाव होने से । नाश अर्थात् व्यवहार से वह नित्य कहने में आती है । कहो, समझ में आया ? ऐसी की ऐसी पर्याय रहनेवाली है, इस अपेक्षा से (नित्य कही जाती है) । पर्याय तो समय-समय में बदलती ही है । व्यवहार से अभूतपूर्व पर्याय में से (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण नित्य – ऐसे वे भगवन्त परमेष्ठी होते हैं । लो, जैन में रहे हुए को भी उनके जैन सम्प्रदाय में क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती । जहाँ तहाँ भटकते हैं । यह अभी

मुम्बई में करनेवाले हैं न ? अठारह दिन के पर्यूषण । समाचार-पत्र में आया था । महावीर की वाणी । आठ दिन श्वेताम्बर के, दस दिगम्बर के । महावीर की वाणी का... अठारह दिन ।

मुमुक्षु :मूर्ख हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मूर्ख तो कोई हुआ ही नहीं, ऐसा कहते हैं । कौन जाने पहले उसमें घुस गया । फिर और इसमें... डाला । ...अठारह दिन के पर्यूषण, सौ रुपये की टिकिट । अठारह दिन व्याख्यान सुनना हो तो सौ रुपये देना पड़ेगा । कल समाचार पत्र में आया था न ? पैसा उगाहना और महावीर के नाम की वाणी । कहाँ महावीर और कहाँ... महावीर तो महावीर ही हैं । आहाहा ! महावीर की वे बेचारे कहते हैं, महावीर की २५०० वर्ष मनाना है । अपने जैन तो थोड़े हैं, ऐसा हम महोत्सव नहीं कर सकेंगे । जैसी विश्व में बौद्ध की हुई है, वैसी कोई हम नहीं कर सकेंगे । भगवान तो कोई... बुद्ध वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि था । ये तो तीन लोक के नाथ, सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्णानन्द, इनका अपन महोत्सव क्या कर सकेंगे ? और नहीं तो सब महोत्सव में इकट्ठे मिल जाएँ, ऐसा कहते हैं । ईशु का भी महोत्सव, बुद्ध का महोत्सव, गाँधी का महोत्सव और महावीर का महोत्सव ।

मुमुक्षु : लौकिक के साथ मिल जाए ।

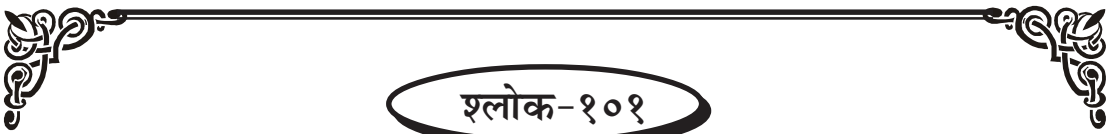
पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक के साथ अपने को (समन्वय नहीं होता)... अरे ! महावीर कौन और ईशु तथा बौद्ध कौन ? तीन लोक के नाथ एक समय में जिन्हें परिपूर्ण ज्ञान.. परमेश्वर कृतकृत्य हो गये । उनका यह महोत्सव... तुलना करना... साधारण के साथ तुलना... एक मत है, इसकी महिमा कुछ घटे ऐसी नहीं है । यह कहा था वहाँ । वहाँ साहूजी आये न ? कहा था, बात तो ऐसी है । अपने जैन चाहे जैसे हों... चाहे जितने हों परन्तु महोत्सव ईशु का किया, वैसी नहीं कर सकेंगे । वे तो करोड़ों रुपये साधारण, पूरा वर्ग ही अभी मिथ्यादृष्टि का बड़ा है । वह तो बड़ा होता है । मनुष्य में अधिक ।

भगवान ! आहाहा ! एक समय में तीन काल, तीन लोक (जाने), उन्हें नहीं परन्तु पर्याय जानते हुए जानने में आ जाएँ । आहाहा ! ऐसी बात की गन्ध अन्यत्र कहाँ है ? ईशु और बौद्ध वे तो सब... जरा सब... आए... जैन... थोड़े, वे थोड़े भी मतभेद एक ओर रखकर एक होवे तो करो, दूसरा क्या ? शुभभाव है । वह कोई शुद्ध नहीं । तब ऐसा कहा था । साहूजी... भाई । आहाहा ! आत्मा अनन्त गुण और सब पूर्ण प्रगट पर्यायरूप से परिणमन

हो गया। और एक समय में जिन्हें तीन काल-तीन लोक जानने में आवे और वह-वह दशा ऐसी की ऐसी कायम रहे, इसलिए उसे नित्य कहा जाता है। कूटस्थ कहा है न!

सिद्ध भगवान की पर्याय को कूटस्थ कहा। कूटस्थ का अर्थ? ऐसी की ऐसी रहती है, इस अपेक्षा से। बाकी समय-समय में बदलती है। सिद्ध का ज्ञान, केवलज्ञान समय-समय में बदलता है। केवलज्ञान तो पर्याय है, कोई गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाल है। आहाहा! उसका महोत्सव कौन करे? अन्तर में अनुभव करके उग्रता प्रगट करे, वह महोत्सव है। आहाहा! यह प्रभु का पामर प्राणी क्या महोत्सव करे?

यहाँ कहते हैं, वह पर्याय कायम रहती है, इसलिए उसे नित्य कहा जाता है। आहाहा! ध्रुव तो नित्य है परन्तु पर्याय भी सदा ऐसी की ऐसी रहती है, इसलिए पर्याय को भी नित्य कहा जाता है। ध्रुव आया है न पहले? ध्रुव, अचल। समयसार की पहली गाथा। सिद्ध भगवान ध्रुव हैं। यह पर्याय की बात है। ध्रुव है न? 'वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं' वह पर्याय ध्रुव है। ऐसे समय-समय में नाशवान है। यह कहा तो भी ऐसी की ऐसी है, इसलिए ध्रुव है, ऐसा कहने में आता है। इसने कभी अनन्त काल में यह आत्मा क्या? वस्तु क्या? शक्ति क्या? दशा क्या? उसकी सम्हाल करने की इसने दरकार नहीं की। इस दुनिया की पंचायत-जंजाल, व्यवहार धन्धा, शुभ की क्रिया में रुककर... आत्मा ऐसा राग से भिन्न ऐसी अनन्त सामर्थ्यवाला तत्त्व, जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल ज्ञात हो, ऐसी की ऐसी पर्याय नित्य रहा करे। आहाहा!



श्लोक-१०१

अब ७२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

(मालिनी)

व्यवहरण-नयेन ज्ञानपुञ्जः स सिद्धः,

त्रिभुवनशिखराग्रग्रावचूडामणिः स्यात् ।

सहज-परम-चिच्चिन्तामणौ नित्य-शुद्धे,
निवसति निज-रूपे निश्चयेनैव देवः ॥१०१॥

(वीरछन्द)

वे सिद्धप्रभु व्यवहारनय से ज्ञान के घनपुञ्ज हैं।
त्रिभुवन शिखर की शिखा के चूड़ामणी घनरूप हैं ॥
वे देव निश्चय से सहज चैतन्य चिन्तामणि परम।
निज नित्य शुद्ध स्वरूप में ही वास करते हैं स्वयं ॥

[श्लोकार्थः —] व्यवहारनय से ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान त्रिभुवनशिखर की शिखा के (चैतन्यघनरूप) ठोस चूड़ामणि^१ हैं; निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्य-चिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध निजरूप में ही वास करते हैं।

श्लोक-१०१ पर प्रवचन

अब ७२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

व्यवहरण-नयेन ज्ञानपुञ्जः स सिद्धः,
त्रिभुवनशिखराग्रग्रावचूडामणिः स्यात् ।
सहज-परम-चिच्चिन्तामणौ नित्य-शुद्धे,
निवसति निज-रूपे निश्चयेनैव देवः ॥१०१॥

भगवान सिद्धपरमात्मा व्यवहारनय से लोक के अग्र में हैं, ऐसा कहने में आता है। पर के क्षेत्र में हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से तो भगवान अपने स्वरूप में ही है। लोक के अग्र में कहना, यह व्यवहार है - ऐसा कहते हैं। लोक पर है न? पराश्रय, वह व्यवहार। यह तो भगवान अपने गुण की पर्याय में बसे हुए हैं। भाव में बसे हुए हैं। अपने क्षेत्र में बसे हुए हैं। परक्षेत्र में नहीं। अपना असंख्य प्रदेश क्षेत्र है, उनके अनन्त गुण की पर्याय के परिणामन में बसे हुए है। निज क्षेत्र में बसे हैं, यह निश्चय। लोक के अग्र में

१. चूड़ामणि = शिखामणि; कलगी का रत्न; शिखर का रत्न।

रहते हैं, यह व्यवहार। वे कहें - लोक के अग्र में व्यवहार, यह खोटा है ? व्यवहार अभूतार्थ है न ? अभूतार्थ का अर्थ ? लोक के अग्र में वास्तव में नहीं है। वास्तव में अपने स्वरूप में हैं। समझ में आया ? अब इसका अर्थ करते हैं कि तुम लोक के अग्र को व्यवहार कहते हो। व्यवहार तो अभूतार्थ है। तो लोक के अग्र में नहीं ? अन्यत्र हैं ?आहाहा !

निश्चय से लोक के अग्र में नहीं हैं। निश्चय से अपने स्वरूप में हैं। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में स्वयं भगवान विराजते हैं। परक्षेत्र में नहीं, तथापि परक्षेत्र में है, ऐसा कहना व्यवहार है। व्यवहार अन्यथा कहता है। व्यवहार से व्यवहार को सच्चा सिद्ध करना है।

व्यवहारनय से ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान... वह ज्ञान का पुंज प्रभु है। अकेली ज्ञानदशा। पूर्ण ज्ञानपुंज हो गये हैं। ऐसा ही यह आत्मा है। अकेला ज्ञान का पुंज है। **व्यवहारनय से...** इतना रखना। **ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान त्रिभुवनशिखर की शिखा के...** त्रिभुवन के शिखर के ऊपर (चैतन्यघनरूप) **ठोस चूड़ामणि हैं;**... चैतन्यघन तो अपना स्वभाव है परन्तु वहाँ शिखर के ऊपर है, यह व्यवहार से कहा जाता है। ठोस-ठोस। ठोस चूड़ामणि। **कलगी का रत्न; शिखर का रत्न।** है। असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें विकल्प का प्रवेश नहीं। वहाँ परक्षेत्र का प्रवेश नहीं। आहाहा ! लोक का अग्र कहो परन्तु उस अग्र के क्षेत्र का अन्दर प्रवेश नहीं। अपने क्षेत्र में वे स्वयं हैं। आहाहा !

निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्यचिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध... वह व्यवहार था। लोक के अग्र में वह (व्यवहार था)। **निश्चय से वे देव...** परमात्मा सिद्ध भगवान **सहजपरमचैतन्य...** स्वाभाविक परमचैतन्य **चिन्तामणिस्वरूप...** परमचैतन्यचिन्तामणि। आहाहा ! जिसमें लोकालोक... एक समय, 'स' के बोलने में असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय में लोकालोक ज्ञात हो जाए, ऐसा चैतन्यचिन्तामणिरत्न है। **निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्यचिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध...** पर्याय कायम अर्थात् निजस्वरूप में ही वास करते हैं। पर्याय निर्मल शुद्ध वहाँ बसती है, ऐसा कहते हैं। अपनी परम आनन्ददशा, अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत, वह समय-समय में अनन्त अमृत का भोजन भगवान करते हैं। आहाहा ! सिद्ध भगवान को अतीन्द्रिय अमृत का भोग समय-समय में है। यह भगवान को भोग चढ़ाते हैं न ? क्या कहलाता है ? थाल। वैष्णव चढ़ाते हैं। वह भोग धूल का (जड़ का) है। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का भोग, परमात्मा को

अनन्त भोग प्रगट हुआ है। ऐसे चिन्तामणि नित्यशुद्ध निजस्वरूप में ही वास करते हैं। यह सब पर्याय की बात है। नित्यशुद्ध निजस्वरूप... परिणति में वे बसते हैं। निश्चय से उसमें बसते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से लोक के अग्र में बसते हैं। लोक के अग्र में हैं, यह बराबर है परन्तु आत्मा लोक के अग्र में हैं, यह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखा? परन्तु है न? इस अपेक्षा से बराबर है परन्तु आत्मा उसमें अग्र में है, यह व्यवहार है। निश्चय से तो अपने स्वरूप में है।

अपना निज मन्दिर, निरावरण, निर्मल दशा हुई, उसमें वे बसते हैं। अरे! अरूपी भी महापदार्थ है। अरूपी (का अर्थ) तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। अरूपी का स्वरूप है। अरूपी का रूप स्वरूप है। ले, स्वरूप है या नहीं अरूपी भी? वह जड़स्वरूप है। अरूपी स्वरूप है। स्वरूप पदार्थ है। विज्ञानघन चिन्तामणि रत्न ऐसा नित्य शुद्ध निजस्वरूप में ही बसता है। उसका क्षेत्र वह है। लोक के अग्र में कहना, वह पर की अपेक्षा से व्यवहार है। दूसरा श्लोक, १०२।

श्लोक-१०२

(स्रग्धरा)

नीत्वास्तान् सर्व-दोषान् त्रिभुवन-शिखरे ये स्थिता देह-मुक्ताः
तान् सर्वान् सिद्धिसिद्धयै निरुपमविशदज्ञानदृक्शक्तियुक्तान् ।
सिद्धान् नष्टाष्ट-कर्म-प्रकृति-समुदयान् नित्य-शुद्धाननन्तान्,
अव्याबाधान्नमामि त्रिभुवनतिलकान् सिद्धिसीमन्तिनीशान् ॥१०२॥

(वीरछन्द)

सर्व दोष को नष्ट किया लोकाग्र शिखर पर जो थिर हैं।
देह मुक्त निरुपम निर्मल जो ज्ञान शक्ति से शोभित हैं ॥
जो हैं अष्टकर्म की प्रकृति के समूह के नाशक जान।
नित्य शुद्ध हैं जो अनन्त हैं अव्याबाध त्रिलोक प्रधान ॥

मुक्ति सुन्दरी के स्वामी हैं निर्मल गुण अनन्त की खान।
सिद्धि प्राप्ति के लिए अहो! मैं सब सिद्धों को करूँ नमन ॥

[श्लोकार्थः] जो सर्व दोषों को नष्ट करके देहमुक्त होकर त्रिभुवनशिखर पर स्थित हैं, जो निरुपम विशद (निर्मल) ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं, जिन्होंने आठ कर्मों की प्रकृति के समुदाय को नष्ट किया है, जो नित्यशुद्ध हैं, जो अनन्त हैं, अव्याबाध हैं, तीन लोक में प्रधान हैं और मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं, उन सर्व सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु मैं नमन करता हूँ।

श्लोक-१०२ पर प्रवचन

नीत्वास्तान् सर्व-दोषान् त्रिभुवन-शिखरे ये स्थिता देह-मुक्ताः
तान् सर्वान् सिद्धिसिद्धयै निरुपमविशदज्ञानदृक्शक्तियुक्तान् ।
सिद्धान् नष्टाष्ट-कर्म-प्रकृति-समुदयान् नित्य-शुद्धाननन्तान्,
अव्याबाधान्नमामि त्रिभुवनतिलकान् सिद्धिसीमन्तिनीशान् ॥१०२॥

यह क्या कहा... अर्थ किया है ? अव्याबाध है परन्तु इसमें वापस... है वह ? नमामि । अव्याबाधन नमामि । अव्याबाध ऐसे भगवान के स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्लोकार्थः : जो सर्व दोषों को नष्ट करके... इसका अर्थ सर्व दोषों को नष्ट करके... लो । कितने ही सिद्ध तो अनादि के हैं । सिद्ध भी दोष का नाश करके ही सिद्ध हुए हैं । अनादि की परम्परा तो यही है । आहाहा ! विवाद उठाते हैं । ऐसा कि सिद्ध अनादि के अनन्त हैं । वे पहले संसारी थे, फिर सिद्ध हुए । तब पहले संसारदशा बड़ी हुई, ... फिर सिद्ध हुए । एक-एक व्यक्ति की अपेक्षा से तो ऐसा ही कहा जाता है । अनन्त की अपेक्षा से अनन्त सिद्ध अनादि के हैं । पहले कोई सिद्ध नहीं थे और पहला हुआ, ऐसा नहीं होता । पहले कोई सिद्ध नहीं थे और संसार का नाश करके पहले हुए हैं, ऐसा नहीं होता । सिद्ध अनादि-अनन्त; संसार अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा है । सिद्ध हुए, ऐसा जब कहना हो, तब ऐसा ही कहा जाता है ।

सर्व दोषों को नष्ट करके देहमुक्त होकर... लो ! देह थी, उससे मुक्त होकर ।

त्रिभुवनशिखर पर स्थित हैं,... तीन भुवन के शिखर पर स्थित हैं। जो निरुपम विशद (निर्मल) ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं,... जिसे उपमा न दी जा सके, ऐसे निर्मल ज्ञानदर्शन से युक्त हैं-सहित हैं। ज्ञानदर्शन से सहित हैं। पर से सहित हैं, ऐसा नहीं। निर्मल, विशद, निरुपम-जिसकी उपमा नहीं मिलती। ऐसे ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं,... यह पर्याय की बात है। ज्ञानदर्शन शक्ति, यह पर्याय की बात है।

जिन्होंने आठ कर्मों की प्रकृति के समुदाय को नष्ट किया है,... भाषा क्या आवे ? जिन्होंने आठ कर्म की प्रकृति, वापस। उसका स्वभाव, उसके समुदाय को नष्ट किया है। अपना स्वभाव पूर्ण प्रगट किया है। जो नित्यशुद्ध हैं,... लो, यहाँ आया। नित्यशुद्ध हैं। जो निर्मलदशा प्रगट हुई, वह कायम ऐसी की ऐसी रहती है। व्ययरहित उत्पाद और उत्पादरहित व्यय, आता है न ? भाई ! प्रवचनसार में। आहाहा ! व्ययरहित उत्पाद। सिद्धपर्याय प्रगट हुई, कैसी ? कि व्ययरहित। उत्पाद बिना का व्यय-संसार का नाश हुआ, संसाररहित... अब उत्पाद... है ? प्रवचनसार... अन्दर है। व्ययरहित उत्पाद और उत्पादरहित व्यय। आहाहा ! तो ही सिद्धपना रहे न ? नित्य है न ? जो नित्य पर्याय प्रगट हुई, उत्पाद। व्ययरहित उत्पाद। अब उस पर्याय का व्यय-नाश नहीं होगा। इस संसार का व्यय हुआ, वह उत्पादरहित व्यय हुआ। अब फिर संसार उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा ! ऐसे भगवान-सिद्ध भगवान की जाति का तू है, कहते हैं। आहाहा ! ऐसा कहाँ स्वरूप है ? दूसरे सब गप्प मारते हैं। महावीर की वाणी... आहाहा ! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जैनदर्शन अर्थात् कोई सम्प्रदाय नहीं, विश्वदर्शन है। विश्व का स्वरूप है, आत्मा का, जड़ का स्वरूप है, ऐसा इसका स्वरूप है। ऐसी जो सिद्ध भगवान की पर्याय प्रगट हुई, वह नित्य शुद्ध है, ऐसा कहते हैं।

जो अनन्त हैं,... वह पर्याय अनन्त है। ऐसी की ऐसी अन्तरहित हुआ ही करेगी। अव्याबाध हैं,... कोई विघ्न करनेवाला नहीं है। लो ! अव्याबाध है। धर्मास्तिकाय ने सिद्ध को रोका है तो अव्याबाध नहीं रहे। सिद्ध को धर्मास्तिकाय ने रोका है न ? वे क्यों नहीं ऊपर जाते ?

मुमुक्षु : लोक का आत्मा लोक में रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा लोक का द्रव्य है, लोक में रहेगा। अलोक में कहाँ जाता

था ? आहाहा ! लोक की चीज़ है, लोक में रहती है। अलोक में कहाँ से जाए ? लोक तो उसे कहते हैं—लोकयन्ति इति लोकः। जहाँ छह द्रव्य दिखते हैं, उसे लोक कहते हैं। अलोक अर्थात् जहाँ छह द्रव्य हैं नहीं, एक आकाश है, उसका नाम अलोक। आहाहा ! ऐसी बात देखो तो सही ! सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसी वस्तु की स्थिति वर्णन की, ऐसी स्थिति कहीं, कहीं अन्यत्र नहीं है। सब बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। लाखों लोग इकट्ठे हों, धूल में भी कहते हैं नहीं। आहाहा ! सत्य तो यह है।

तीन लोक में प्रधान हैं... त्रिभुवन तिलक। तीन लोक के तिलक हैं। ऊपर। और **मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं,...** लो। सिद्धिसीमन्तिनीशान् मुक्तिरूपी सुन्दरी। यह पवित्र आनन्द की दशा और पूर्ण ज्ञानदशा, ऐसी जो उसकी पर्याय, उसके वे स्वामी हैं। अपनी निर्मल पर्याय के स्वामी हैं। लोक के नाथ कहलाते हैं न ? वे तो जानते हैं 'लोगनाहाणं, लोग-हिआणं, लोग-पईवाणं, लोग-पज्जोअगराणं, अभय-दयाणं, चक्खु-दयाणं, मग्ग-दयाणं...' आता है या नहीं ? ...बहुत विशेषण लगाते हैं। परन्तु है क्या ?, अर्थ की खबर नहीं होती। मग्ग-दयाणं व्याख्यान में करते होंगे। पहाड़े बोले। आहाहा !

मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं,... लो। उन सर्व सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु मैं नमन करता हूँ। लो। ठीक। मैं भगवान को नमस्कार करता हूँ, उससे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी। सिद्धि को नमे, वह तो विकल्प है। वह तो बात है। उसमें नहीं आता 'वन्दे तद्गुण लब्धये' - हे भगवान ! आपके गुणों की प्राप्ति के लिए आपको नमन करता हूँ। यह तो बात करते हैं। तुम्हारी जाति है, वह मुझे अन्तर में से प्रगट करनी है। आपको वन्दन करूँ, ऐसे विकल्प में कुछ नहीं है। यह तो समयसार में पहले नहीं कहा ? यह टीका करते हुए मेरी शुद्धि बढ़ जाओ। टीका करते हुए बढ़ जाओ तो टीका का तो विकल्प है।

मुमुक्षु : अभी क्यों लिखे होवे तब लिखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिखे ? लिखते हैं वह बराबर लिखते हैं। अन्तर में मेरा आश्रय चैतन्य में वर्तता है। यह लिखने के समय भी मेरा आश्रय तो चैतन्य द्रव्य ही है। इसके आश्रय की उग्रता होने से अशुद्धता टल जाओ, ऐसा कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, उन **सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु...** मुक्ति की प्राप्ति के लिए वन्दन करता हूँ। 'सिद्धासिद्धिं मम दिशंतु' आता है न ? हे सिद्ध भगवान ! मुझे सिद्धि

दिखाओ। इसका अर्थ कि मैं केवलज्ञान प्रगट करूँ, तब तुम्हारी सिद्धि दिखेगी। लोग्गस्स में आता है या नहीं? हिम्मतभाई! नहीं आता होगा। यह लोग्गस्स में आता है। ...उस सर्व सिद्धि की प्राप्ति के लिए, मेरा प्रयोजन मेरे स्वभाव का आश्रय लेकर पूर्ण प्राप्ति करूँ, यह मेरा हेतु है, ऐसा कहते हैं। वन्दन करने का विकल्प है, उससे होगा। ऐसे वन्दन के विकल्प के काल में भी मेरा आश्रय स्वचैतन्य पर है। वह आश्रय बढ़कर मुक्ति की प्राप्ति हो। इसलिए मैं अभी (नमता) हूँ, ऐसा कहते हैं।

के हेतु मैं नमन करता हूँ। लो! सिद्ध भगवान को नमन करना, वह परद्रव्य है। परद्रव्य को नमन, वह तो विकल्प है। विकल्प ही है, राग है। उस समय स्व के आश्रय का जोर करके मैं मुक्ति को प्राप्त करूँ, यही मेरी अभिलाषा है। राग में अटकूँ और राग का फल मुझे मिलना, यह नहीं। आहाहा! भाई! वीतराग की वाणी... व्यवहार से वर्णन करे कुछ, निश्चय से वर्णन करे कुछ।

मुमुक्षु : दो नये का विरोध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दो नये विरुद्ध हुए।

यह १०२ श्लोक हुआ १०३ कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)